RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-01
January -2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

अशोक वाजपेयी के प्रिय कवि : कबीर

धीरेन्द्र मोहन मीना

शोधार्थी पी.एचडी, हिन्दी राजस्थान विश्वविद्यालय, बी–423, महेश नगर, जयपुर–302015

कवि पर कबीर का काफी प्रभाव है। इसे उन्होंने छुपाया भी नहीं है। इस पुस्तक से पता चलता है कि उनके प्रिय कवि कबीर ही हैं। उन के प्रश्न भी ऐसे हैं जिन के उत्तर केवल कबीर के पास हैं। किसी दूसरे के पास उन की समस्याओं के समाधान नहीं हैं। एक 'घर' का ही मामला लिया जा सकता है। वे पूछते हैं– "हम किस से अपना घर/सुख पूछने जाएंगे?" वे इसी कविता में आगे पूछते हैं– "कहाँ से आएगी वह प्रतिध्वनि/जो हमें घर लौटाएगी?" कबीर का उत्तर है:

"अवधू, भूले को घर लावै।
सो जन हमको भावै।।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तज बन नहीं जावै।
घर में जुक्त मुक्त घर ही में, जो गुरु अलख लखावै।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै।
उन्मुनि रहै, ब्रह्म को चिन्है, परम तत्व को ध्यावै।
सुरत–निरत सो मेला करके, अनहद नाद बजावै।
घर में बसंत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै।
कहैं कबीरा सुनो हो साधू, ज्यों का त्यों ठहरावै।"

कबीर इस कवि की कवतिाओं में हर तरह से मदद के रूप में आते हैं। बदले हुए समय के हिसाब से एक कविता में लिखा गया है– "राम झरोखे से कबीर उन का/और उन के संसार का मुजरा लेता है/और कम से कम इस बार साधुओं से कुछ नहीं कहता।"

कुमार गन्धर्व ने कबीर को नई शैली में गाया है। कबीर का निर्गुण गाते समय वे कबीर से एकाकार हो जाते थे। कवि का इस गायक से निकट का सम्बन्ध था। जब कुमार गन्धर्व याद आते हैं तो कवि को कबीर भी याद आते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि कवि को कबीर जुलाहे के रूप में याद आते हैं। वे डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की तरह कबीर की प्रशंसा करने में कबीर के जुलाहेपन से नाक–भौंह नहीं सिकोड़ते। उनकी कविता है– "शब्द एक के थे और सुर दूसरे का/उस शैव चबूतरे के पास/ जब वह जुलाहा आया अपना इकतारा लिए हुए/तो मुश्किल था उस के लिए भी एक को दूसरे से अलगाना।"

पीछे देखा गया है कि अशोक वाजपेयी कबीर को बेहद सम्मान से देखते हैं। इस में वे उन के जुलाहेपन से चिढ़ते नहीं हैं बल्कि उनका सम्मान बढ़ता है। कबीर की वजह से दलित–पिछड़ी जातियों से दुराव नहीं रख सकते। इस महान जुलाहे की शागिर्दी में उन्होंने कुम्हारों, लुहारों, बढ़ियों और मछुआरों से खुद को जोड़ा है। वे लिखते हैं– "मैने सच, सपना, इतिहास, समय, भविष्य आदि पर कुम्हार, लौहार, मछुआरे आदि जैसे बीसवीं शताब्दी द्वारा हाशिए पर डाल दिए गए चरित्रों के मर्मकथनों की एक श्रृंखला के माध्यम से अपनी पहली लम्बी कविता लिखी जो सात खण्डों में है। ....यों तो उस कविता में कवि स्वयं एक माइनर चरित्र है पर दरअसल पूरी कविता, इन अलग–अलग आवाजों में चरितार्थ, कवि के बारे में ही है। उसमें तथाकथित यथार्थ का अभाव नहीं है लेकिन विस्तार फिर वितान बन जाता है।"

इस संकलन की 'बढ़ई' शीर्षक की कविता इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि शिल्पी और दार्शनिक में अन्तर नहीं किया गया है। ऐसा नहीं है कि मजदूर, किसान और कारीगर केवल काम करेंगे और सोचने का ठेका किसी और का होगा– अर्थात ब्राह्मण का। कविता के शुरू में ही लिखा गया है– "मै सिर्फ अपना रन्दा नहीं चलाता/या ठोंक–पीट ही नहीं करता रहता, हूँ/मैं अपना काम करते हुए सोचता भी हूँ।" बढ़ई सोचने के साथ–साथ सपने भी देखता है। उस का एक सपना इस प्रकार है– "मैं कभी–कभी सपना देखता हूँ कि/मैंने आसमान के बाराबर एक मेज बनाई है/और उस पर सब को खाने का न्यौता दिया है:/हर रंग के लोगों को, ब्राह्मण और अछूत को,.. .. नाइयों और मछुआरों को...।" लेकिन यह सोच और यह सपना तब अपने अर्थ और भाव से तिरोहित हो कर रह जाता है जब इसी कविता में लिखा मिलता है–"पर यह तो सपना है:/भला एक बढ़ई के बुलाए इतने मेहमान जीमने कभी जाएंगे भला।" इस कविता में ब्राह्मण और अछूत दोनों को न्यौते दिए गए हैं लेकिन अनन्तदास की लिखी 'कबीर परिचई' में काशी के ब्राह्मणों को जुलाहे कबीर से शिकायत यह थी कि कबीर ने ब्राह्मण नहीं जिमाए थे बल्कि शूद्र जिमाए थे।

'मछुआरा' शीर्षक की कविता और गहरी गई है। बात सीधी–सी है, मछुआरा है तो उस का जाल भी है। वह जाल में मछलियां फाँस रहा है। वह जाल लगा कर अपनी नाव में बैठा ही इसलिए है। कवि ने मछुआरे के रूप में लिखा है–"कभी अपनी नाव पर अनमना बैठा मैं सोचता हूँ।" जो सोच है, वह विराट दर्शन की है। मछुआरा खुद से पूछता है– 'जो सुन्दर है उसे देर–सबेर कोई–न–कोई लील क्यों जाता है?/पानी का सच जाल का सच नाव का सच और मछलियों का सच/एक दूसरे के खिलाफ क्यों हो जाता है?" सोचते–सोचते यह विराट–दर्शन खूंखार हो जाता है। सब कुछ एक–दूसरे पर बाज का झपट्टा और शेर का शिकार हो जाता है। तब जो ज्ञान उदय हुआ है वह इन शब्दों में व्यक्त किया

RRIJM 2015, All Rights Reserved

गया है– "यह सिर्फ हमारे समय का फेर नहीं है:/यह तो सदा से ऐसा ही है।/जैसे वह सचाई भी कि हम सब आखिरकार/एक दूसरे के जाल में फंसे हैं/और सवाल हर समय सिर्फ इतना–सा है कि कौन/किस को पहले फाँसता और खाता है।" कहने का मतलब यह है कि यह मछुआरा किसी भूल में नहीं है। वह रक्तरंजित दांतों की कहानी बखूबी जानता है।

प्रस्तुत काव्य–संकलन अधूरा रह जाता यदि इस में 'चमार' का जिक्र न होता। चमार उत्तर भारत की इतनी बड़ी जाति है कि हर गाँव में पाई जाती है। यह भारत की अति महत्वपूर्ण जाति है। विद्वानों ने ईमानदारी से मूल्यांकन नहीं किया लेकिन आधे से ज्यादा भारत का निर्माण इस अकेली चमार जाति ने किया है। वैचारिक और धर्मिक स्तर पर भी यह शून्य में नहीं जी है। जब कवि 46 वर्ष के हो कर अपने पुराने घर की तलाश करने जाते हैं तो वह उन्हें ढूँढे मिलता नहीं है। घर खू गया है जिस बदलाव में कवि ने यह भी विशेष रूप से महसूस किया है कि 'बन्द हो गई भगतें चमारों की।' बस, कवि यह बताना भूल गए कि इस दौरान चमार अम्बेडकरवादी हो गए हैं। उन्होंने अपनी पुरानी भगतें छोड़ दी हैं। चमार कौम का वैचारिक परिवर्तन और विकास बहुत तेजी से हुआ है। कुछ दिन में पता चलेगा कि सच को खोजते–खेजते वे अपने मूल आजीवक धर्म पर आ गए हैं।

लेकिन वह उन का मोहल्ला कैसा था जिसकी वे खोज करने गए थे? वह एक छोटा–सा आदर्श मिनी भारत था। उसे सचमुच तीर्थ कहा जा सकता है। कवि ने उस मौहल्ले का संक्षिप्त वर्णन किया है– "मुहल्ले में तब बहुत कम दुकानें थी लेकिन चमारों, कुछ मुसलमानों और ईसाइयों की बस्तियां थी। एक पुराना देवी का मन्दिर और वृन्दावन बाग थे, छोटी सी मजिस्द थी। मुहल्ले के छोरी पर एक चर्च और स्वीडिश मिशन हाई स्कूल।"

कवि का दलित–पिछड़ों से जुड़ने का मन बना हुआ है। उन्हांने अपने इस भाव को कविता के व्यवहार में उतारा है लेकिन उन्हेांने इस का दार्शनिक आधार भी खोजा है। यह सामान्य और विशेष के अन्तर्सम्बन्धों का तर्क है। वे लिखते हैं– "हम विशेष को सामान्यीकृत करें यह ठीक है। लेकिन उतना ही जरूरी है कि हम सामान्य में, निपट साधारण में विशेष को खोज–पा सकें।" वास्तव में, यह घट–घट में राम को खोजने वाली बात ही है।

अशोक वाजपेयी ने 'आदमी होने की तकलीफ' के एक बहुत ही मर्म भरे मुहावरे का प्रयोग किया है। यदि उस आदमी होने में भी भारतीय स्थिति के 'अछूत होने को' और जोड़ दिया जाए तो तब वह तकलीफ पूरे आत्यन्तिक दर्द में तब्दील हो जाती है। फिर पीड़ा के बजाय क्रोध और युद्ध सामने आते हैं। लेकिन ये कवि मनोभूमि में इस जगह आने से पहले ही अपनी कविता को विराम दे चुके हैं। इसलिए उन की कविता सीमित कविता बन कर रह गई है। वे कविता में अपने तक सीमित हो कर गए हैं। शायद उन की निगाह में दूसरे द्विज कवि हैं जब वे लिखते हैं– "सामाकि सचाई से अपने सीधे संलग्न होने के आधार पर इधर की बहुत सारी कविता अपने अधिक मानवीय और सामाजिक होने का रौब गालिब करती रही है। उस में अक्सर कवि अपने तथाकथित संघर्ष का महिमामण्डन करते हुए दूसरों पर फैसला देने की उत्सुकता दिखाता है और हमारे समय की दुर्व्यवस्था और अन्याय में खुद उस की जो हिस्सेदारी है उस की बहुत कम चीरफाड़ या पड़ताल करता रहा है।" अन्य द्विज कवियों के लिए कवि की यह नसीहत बिलकुल सटीक और उचित है।

संदर्भ सूची

1. समीक्षा पत्रिका– जुलाई–सितम्बर 2016।
2. आलोचना के सौ बरस, तीनों भाग, अरविन्द त्रिपाठी, शिल्पायन, दिल्ली–प्रथम संस्करण, 2008
3. आधुनिक कवि : 23, अशोक वाजपेयी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 12 सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, पृ. 19
4. वही, पृ. 20
5. वही, पृ. 66
6. वही, पृ. 16
7. वही, पृ. 31
8. वही, पृ. 34
9. वही, पृ. 35
10. कबीर बीजक, प्रस्तुतकर्ता डॉ. शुकदेव सिंह नीलाभ, नीलाभ प्रकाशन, खुसरा बाग रोड़, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1972, पृ. सं. 114
11. ऐसे तो नहीं कबीर, मोहन कृष्ण बोहरा, जनसत्ता दिल्ली, 8 अप्रेल, 2001
12. कबीर समग्र, प्रथम खण्ड, संपदाक/लेखक युगेश्वर, हिन्दी प्रचार संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1995, पृ.सं. 580

RRIJM 2015, All Rights Reserved